प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे
मंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ
वर्धा (म० प्र०)

संशोधित संस्करण
चौथी बार २०,०००
कुल छपी प्रतियाँ ३५,०००
अगस्त, १९५५
मूल्य चार आना

मुद्रक
मुन्नीलाल,
कल्याण प्रेस,
बनारस

दो शब्द

धीरेन्द्र भाई की यह छोटी-सी किताब भू-दान-यज्ञ के विषय में मौलिक विचार मौलिक ढंग से पेश करती है। भू-दान-यज्ञ गरीबों को थोड़ी राहत पहुँचाने भर से सन्तुष्ट होनेवाला आन्दोलन नहीं है, बल्कि वह जीवन के मूल्यों में फेर-बदल करना चाहता है और उस आधार पर नया समाज खड़ा करने का उद्देश्य रखता है। ऐसा समाज तो शोषणहीन होगा और शासन को विकेन्द्रित करते-करते आखिर शासनहीन भी होगा। मैं आशा करता हूँ कि धीरेन्द्र भाई के इस सरलाक्षर रमणीय विवेचन से भू-दान-यज्ञ का मूल स्वरूप समझने में लोगों को सहूलियत होगी।

०

यद्यपि भूमि-दान-यज्ञ का काम लगभग तीन साल से चल रहा है, फिर भी उसके असली मकसद को बहुत कम लोग समझ सके हैं। 'युग की महान् चुनौती' में श्री धीरेन्द्र भाई ने अहिंसक क्रान्ति और नव समाज-रचना का एक तेजस्वी रूप दरसाया है। स्वयं विनोबाजी अपने प्रवचन और चर्चा में भूदान के विषय में समझाते हैं, फिर भी श्री धीरेन्द्र भाई की यह छोटी-सी पुस्तक, संक्षेप में, किन्तु मौलिक और प्रभावशाली ढंग से, नया विचार और क्रान्तिकारी प्रक्रिया सरल भाषा में प्रस्तुत करती है।

'युग की महान् चुनौती' हरएक क्रांतिकारी युवक के हाथ में होनी ही चाहिए।

—जयप्रकाश नारायण

विषय-सूची

शंका और समाधान

युग की महान् चुनौती

मुझे खुशी है कि भू-दान-यज्ञ में सभी दलों के कार्यकर्ता लगे ए हैं। यद्यपि इसमें सभी दलों के लोग हैं, फिर भी इस ांदोलन के जन्मदाता संत विनोबा ही हैं, जो किसी भी दल के ही हैं। गांधीजी ने जो मंत्र दुनिया को दिया, उसी मंत्र से म सबको दीक्षित करनेवाला यह महान् पुरोहित है। यह -दान-यज्ञ एक महान् क्रांति का आंदोलन है, सर्वोदय का पहला दम है। अतएव आप लोगों को इस बात पर विचार करना ोगा कि इस महान् आंदोलन का तात्त्विक आधार क्या है और सके फलस्वरूप हम कैसी समाज-व्यवस्था स्थापित करना चाहते । इन बातों पर पूर्ण विचार किये बिना अगर हम भूमि-दान ानी जमीन के सम-विभाजन का आंदोलन सिर्फ भावावेश में ालाते रहें, तो हो सकता है कि यह क्रांति अन्ततोगत्वा कहीं ति-क्रांति का रूप ले ले।

हमारी समस्याएँ

सर्वोदय की क्रांति का मौलिक आधार क्या है ? इस पर तो वेचार करना ही है, लेकिन इससे पहले इन बातों पर विचार

करना होगा कि हमारे मुल्क की आज परिस्थिति क्या है ? उसकी तात्कालिक समस्याएँ क्या हैं और उन समस्याओं का तुरत समाधान न होने पर मुल्क पर क्या-क्या खतरे आ सकते हैं ? गाधीजी कहा करते थे कि आप अगर आर्थिक और सामाजिक क्राति करके समाज के ढाँचे में आमूल परिवर्तन नहीं करेंगे तो जो आजादी मिली है, वह भी आप खो देंगे। लेकिन हम लोगों ने उस समय गांधीजी की बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया और स्वराज्य को सँभालने के काम में लगे। देश में जो समस्याएँ मौजूद थी, वे केवल ज्यों-की-त्यों ही नहीं रह गयीं, बल्कि आज और स्पष्ट रूप से प्रकट हो रही हैं केवल देश की ही नहीं, आज विश्व की समस्या भी जटिल हो रही है, जिसका असर स्वभावत हमारे देश पर भी पडनेवाला है और पड रहा है। इसलिए आज आपको इन तमाम प्रश्नों पर विचार करना होगा और उनके हल करने में लग जाना होगा।

गाधीजी के निधन के बाद हम किंकर्तव्य-विमूढ रहे, लेकिन सौभाग्य से आज विनोबाजी गाधीजी की अन्तिम पुकार के अनुसार एक आर्थिक और सामाजिक क्राति में सलग्न है और ग्रामराज्य यानी असली स्वराज्य कायमकर वर्तमान राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में लगे हुए हैं। यह एक महान् अवसर है, जब आप फिर एक बार आगे बढकर देश की समस्याओं को हल कर सकते हैं।

तो आप विचार करें कि समस्या क्या है ? पहले आप देश की भीतरी समस्याओं की बात सोचें। आप किसी भी बच्चे से पूछें तो वह तुरत बता देगा कि देश की मूल समस्या भूख और बेकारी है। अत सबसे पहले हमें उस भूख और बेकारी की समस्या पर विचार करना चाहिए।

अन्न की समस्या

आज देश का बच्चा-बच्चा अन्न-संकट का अनुभव करता है। मैं जहाँ कहीं जाता हूँ, सड़कों पर स्टेशनों की दीवालों पर, "अधिक अन्न उपजाओ' का पोस्टर देखता हूँ। भाइयो, अन्न पोस्टर के कागज पर नहीं, देहात मे जो जमीन है, उसी पर पैदा करना होगा। अब प्रश्न यह है कि आप अपने ही देहातो में अनाज की पैदावार मे वृद्धि कैसे कर सकेंगे ? आप में अधिकांश खेती करनेवाले लोग हैं। आपको मालूम है कि जमीन जैसी है, वैसी है और उतनी ही है वह कोई रबड़ नहीं है जिसे आप खींचकर बढ़ा सकें और न वह पड़ी-पड़ी ज्यादा पैदावार दे सकती है।

जमीन पर पैदा करने के लिए दो प्रकार के साधनो की आवश्यकता होती है। एक है, खाद-पानी आदि पूँजीगत सामग्री और दूसरा है—उस पर लगनेवाला श्रम। इन दोनों के योग पर ही पैदावार निर्भर करती है जबतक इन दोनों की समष्टि मे वृद्धि नहीं की जायगी, पैदावार नहीं बढ़ सकती। यानी पैदावार बढ़ाने के लिए आपको खाद-पानी और उसमे लगनेवाले श्रम, दोनो में काफी मात्रा में वृद्धि करनी होगी। खाद-पानी के लिए हम लोग बड़ी-बड़ी योजनाएँ बना रहे हैं। कहीं कोसा-बांध तो कहीं दामोदर-घाटी आदि। सुनते हैं, मेघ बांधकर पानी बरसाने की भी कोशिश मे लोग लगे हुए हैं। लेकिन इस प्रकार की बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनकर तैयार हो जायें तबतक क्या आप समझते हैं कि पेट की आग पेट तक ही सीमित रहेगी ? तबतक तो यह आग फैलकर सारे मुल्क को खाक कर देगी। फिर इन योजनाओं के फल का उपयोग करने के लिए आप नहीं रह जायेंगे, आपके भूत-प्रेत भले ही रहें।

भूमि-व्यवस्था

इसलिए मैं कह रहा था कि राष्ट्र के स्थायी निर्माण के लिए यद्यपि इन बड़ी-बड़ी योजनाओं की आवश्यकता है - और इन्हें पूरा करना ही चाहिए, तथापि आपको तुरत ही देश को बर्बाद होने से बचाना है तो आपके ही देहातों में जो कुछ खाद-पानी है, जो कुछ मनुष्य-शक्ति और बैल-शक्ति है, उसीके सहारे अन्न की पैदावार बढ़ानी होगी। खाद-पानी आदि पूँजी का साधन अगर आपके गाँव में तत्काल नहीं बढ सकता, तो जमीन पर आज जो श्रम-शक्ति लग रही है, उसीसे बढ़ाना होगा। और इसके लिए जरूरी है कि आप जमीन की मौजूदा व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करें।

यह तो आप सब जानते ही हैं कि देहात के अन्दर जितना श्रम पड़ा है, आज की भूमि-व्यवस्था के कारण वह सबका सब धरती पर नहीं लग रहा है। जो जमीन का मालिक है, वह खुद जमीन जोत नहीं रहा है और जो जमीन जोतता है, वह उसका मालिक नहीं है। आप सबको मालूम है कि जिस जमीन पर मालिक अपने हाथ से काम करता है, उसकी पैदावार ज्यादा होती है, बनिस्बत उसके जो नौकर से कराता है। उसी तरह भूमि का मजदूर अगर दूसरे का खेत जोतता है तो पैदावार कम होती है, बनिस्बत इसके कि वह अपने ही खेत में काम करे। इस प्रकार स्पष्ट है कि आप लोगों में से जिनके पास खेत है, उन्हें अपने हाथ से धरती जोतनी पड़ेगी। और जितनी धरती अपने आप नहीं जोत सकते, वह उन मजदूरों को दान करनी चाहिए जो जमीन पर श्रम तो करते हैं, पर वह जमीन उनकी नहीं है। ऐसा करने से इन भूमिहीन मजदूरों को जमीन में

दिलचस्पी होगी और वे मेहनत करके अधिक-से-अधिक उत्पादन करेंगे।

अतः आप लोगों को, जो भूमि-दान-यज्ञ को, महज त्याग और करुणा का कार्यक्रम समझते हैं, यह समझ लेना चाहिए कि यह ऐसी बात नहीं है। यह तो मुल्क की स्वार्थ-रक्षा का कार्यक्रम है। केवल मुल्क की स्वार्थ-रक्षा की ही बात नहीं, बल्कि मै तो भूमिवालो की व्यक्तिगत स्वार्थ-रक्षा की बात कहता हूँ। मै भूमिवालों से कहना चाहता हूँ कि विनोबा का आवाहन त्याग का आवाहन नहीं, मेहरबानी का आवाहन नहीं, बल्कि स्वार्थ-रक्षा का आवाहन है। यह सही है कि दान से पुण्य भी होता है, लेकिन आप इस पुण्य को तो सिर्फ ऊपरी आमदनी ही समझें।

आप लोग कभी-कभी नाव से नदी पार करते होंगे। नाव के बीच-बीच में जहाँ-तहाँ लकड़ी लगी रहती है और नीचे खाली जगह रहती है। लंगोटी और चिथड़ेवाले नंगे गरीब नीचे बैठते हैं और लम्बी धोती और कमीजवाले बाबू लोग ऊपर। अगर नाव में छेद हो जाय और पानी भरने लगे तो नीचे बैठनेवाले गरीबों की देह में पानी लगता है। उस समय ऊँचे पर सूखे मे बैठनेवाले सोचते हैं कि हम तो सुरक्षित हैं, हमको फिक्र करने की जरूरत नहीं है। लेकिन वे लोग अगर ऐसा ही सोचकर निश्चिन्त बैठे रहें तो उनकी क्या दशा होगी? थोड़ी देर के बाद उनके कपड़े भी गीले होंगे और थोड़ी देर के बाद नाव डूबेगी और साथ-साथ ऊँचेवाले और नीचेवाले, सब डूबेंगे। लेकिन जिस समय लंगोटीवालों का ही कपड़ा गीला होना शुरू हुआ, उसी समय कोई किनारे से पुकारकर यह कहे कि—भाइयो, तुम्हारी नाव में छेद हो गया है, उसे

वन्द करो, नहीं तो डूब मरोगे, नाव में छेद वन्द करने की दूसरी सामग्री न हो तो अपनी धोती और कुरता फाड़-फाड़कर जो लोग नीचे वैठे हैं, उन्हें दो ताकि वे उसे छेद के अन्दर घुसेडकर छेद वद करें,' तो क्या आप इस पुकार को त्याग की पुकार कहेंगे ? नहीं, यह तो शुद्ध स्वार्थ-रक्षा के लिए चेतावनी है। कारण, अगर आप नाव का छेद वंद करने के लिए अपना कपड़ा फाड़कर नहीं देंगे तो नाव के साथ-साथ आप भी डूबेंगे।

इसी तरह आज हमारी आजादी की नाव क्षत-विक्षत हो रही है और यह नाव निराकार गुलामी के समुद्र में डूबना ही चाहती है। ऐसी हालत में अगर सब विनोबा आपको पुकार-पुकार कर कहते हैं कि 'भाइयो, तुम्हारे पास जो लबी धोती और कुरता है, जो सम्पत्ति और भूमि है, उसे फाड़-फाड़कर नीचे-वाले भूमिहीनों के पास फेको, ताकि वे देश में अधिक अन्न उपजा कर नाव का छेद वन्द कर सकें और साथ ही देश के पेट की आग को अन्न से वुझाकर उसे भस्म हो जाने से बचा सकें। आप यह मत समझिये कि सिर्फ देश की आजादी ही डूवेगी या देश जलेगा और आप बच जायेंगे। इसीलिए मैं कहता हूँ कि विनोबा त्याग और मेहरबानी के लिए नहीं, बल्कि आपकी स्वार्थ-रक्षा के लिए पुकार रहे हैं।

वेकारी की समस्या

दूसरी समस्या वेकारी की है। हम सर्वोदय के माननेवाले गांधीजी के अनुयायी तो हमेशा इस वात पर जोर देते हैं कि भारत जैसे घनी आवादीवाले देश में वेकारी की समस्या है

और उसे हल करने के लिए गांधीजी का तरीका ही एकमात्र तरीका है। लेकिन दुर्भाग्य से हमारे देश के बड़े-बड़े अर्थशास्त्री इस बात को नहीं मानते थे। वे गांधीजी के व्यक्तित्व की पूजा अवश्य करते हैं, लेकिन उन्हें उनकी बुद्धि पर आस्था नहीं थी। आखिर हैं तो वे पण्डित ही। पण्डितों का सहज धर्म होता है कि वे जल्दी से नयी बात समझ नहीं सकते। उनका मस्तिष्क पुरानी पोथियों के सूत्रों से इस कदर भरा रहता है कि नयी बात के लिए वहाँ गुंजाइश ही नहीं रहती। लेकिन जब कभी समाज में कोई नयी परिस्थति पैदा होती है, तो उस युग का युग-पुरुष उसके समाधान के लिए नयी बात बताता है। नासमझी के कारण शुरू में जब परिस्थिति विकट होकर एकदम गले पर आ जाती है, तब वे युगपुरुष की बात की सत्यता को महसूस करते हैं।

अर्थशास्त्री झुके

हमारे देश में भी वही हुआ। गांधीजी ने चरखा तथा ग्रामोद्योग द्वारा बेकारी की समस्या के हल का मार्ग बताया। पंडितों ने उसे पागलपन की बात समझा और एक पंचवर्षीय योजना बनाकर सरकार से कहा कि इस योजना पर चलने से देश की बेकारी की समस्या हल हो जायगी। सरकार ने भी उनकी बातों से प्रभावित होकर उस पर अमल शुरू किया। आज उसे चार साल बीत रहे हैं, लेकिन इस अवधि के अनुभव के बाद अर्थशास्त्र के वे ही पण्डित कह रहे हैं कि बेकारी घटने के बजाय बढ़ गयी है। तो अब वे पंडित भी जोरों से इस बात को तसलीम करने लगे हैं कि खादी और ग्रामोद्योग के बिना देश की बेकारी की समस्या हल नहीं हो सकती।

अतएव आपको इस बात पर गंभीरता से विचार करना होगा कि आप क्या करेंगे। संत विनोबा पुकार-पुकारकर देश की जनता से यह बात कह रहे हैं कि अगर आपको बेकारी के संकट से मुक्त होना है, तो केंद्रित उद्योगों के बहिष्कार और ग्रामोद्योगों की स्थापना का आन्दोलन चलाना होगा। वे कहते हैं कि मेरे लिए भूमिदान-यज्ञ और ग्रामोद्योग 'सीता-राम' जैसे अभिन्न हैं।

मिल का माल सस्ता नहीं

हम जब केंद्रित उद्योगों के बहिष्कार की बात करते हैं तो देश के लोग कहते हैं कि मिल की चीज सस्ती होती है और ग्रामोद्योग की चीज मॅहगी, लेकिन गहराई से विचार करने पर मालूम हो जायगा कि यह सस्तापन ऊपर-ऊपर से ही मालूम होता है। असल में मिल का माल सस्ता नहीं है।

कहावत है—"खाली दिमाग शैतान का कारखाना।" यह तो सर्वमान्य हो चुका है कि देश की जरूरत का सामान अगर ग्रामोद्योग से न बनाकर मिल से ही बनाया जाय, तो देश की बेकारी भयंकर रूप से बढ़ती चली जायगी। तो इतने बेकार मनुष्यों का मस्तिष्क शैतान का कारखाना ही बनेगा न? शैतान के कारखाने से शैतानी का ही उत्पादन होगा, इन्सानियत का नहीं। इस प्रकार बेकारों के दिमाग से जो शैतानी पैदा होगी, वह आपके घरों में भी अतिथि के रूप में जायगी। भारत की संस्कृति अतिथि का स्वागतकर उसे सम्मान-पूर्वक विदाई देने की है। यह शैतानी रूपी अतिथि जब आपके घर पधारेगा और आपको उसे समुचित विदाई देनी पड़ेगी तो शायद मिल की चीज सस्ती नहीं पड़ेगी। दुर्भाग्य से आज

देश के निवासी बेहोश हैं। वे जब सस्ती और मँहगी का परता जोड़ते हैं तो वे भूल जाते हैं कि मिल का सामान इस्तेमाल करने से शैतानों की विदाई में जो रकम देनी पड़ेगी, उसे भी परते में जोड़ना चाहिए। फिर वे नहीं कहेंगे कि मिल की चीज सस्ती होती है।

इस प्रकार संत विनोबा केंद्रित उद्योगों के बहिष्कार की जो बात करते हैं उसको अमल में लाने के लिए आपको कुछ महँगा सौदा खरीदना पड़ता है या आज की परिस्थिति में जो परेशानी उठानी पड़ती है उसे झेलना कोई त्याग की बात नहीं है, वह भी स्वार्थ-रक्षा ही है।

पूँजी की आवश्यकता

कल-कारखाना यानी केंद्रित उद्योग के तरीके से दैनिक आवश्यकता की पूर्ति की चेष्टा में आप एक दूसरे संकट में भी पड़ जायेंगे। स्पष्ट है कि केन्द्रीत उद्योगों को स्थापित करने के लिए प्रथम आवश्यकता पूँजी की होगी और वह पूँजी कागज की नहीं, सोने की होनी चाहिए। क्या आप यह मानते हैं कि मुल्क में सोने की पूँजी काफी पड़ी है? नहीं, ऐसा नहीं है। यह देश तो कंगाल हो गया है। अंग्रेजों ने हमारे देश को न्याय-बुद्धि से नहीं छोड़ा था, बनिया होने के कारण उन्होंने इस देश को छोड़ देने में ही परता देखा था। जबतक मुल्क की देह में चाटने भर के लिए खून और माँस रहा, तबतक वे पकड़े रहे, जब हड्डी-हड्डी रह गयी तो छोड़कर चले गये। मतलब यह कि अंग्रेजों के जाते-जाते हम सर्वस्वहीन हो गये। इस हालत में अगर आपको अपनी बुनियादी समस्या

के लिए सोने की आवश्यकता प्रथम और अनिवार्य हो जाय तो आपकी क्या दशा होगी ?

आप लोगों ने अपने पुराने राजा हरिश्चन्द्र की कहानी पढ़ी होगी। जब राजा हरिश्चन्द्र सर्वस्वहीन हो गये और उन्हें दक्षिणा के लिए कचन की आवश्यकता पडी, तो उन्हें अपने को बेचना पड़ा। इसी तरह अगर कगाल भारत की वस्त्र-समस्या को हल करने के लिए कचन की आवश्यकता पड़े, तो आपको भी अपने को उसीके हाथ बेचना होगा, जिसके पास कचन है।

आजादी का खतरा

सन् १८५७ से १९४७ तक यानी ९० साल लड़ाई करके आप अपने सिर से अंग्रेजों की बन्दूक को नीचे उतार पाये हैं। लेकिन मालूम होता है कि बहुत दिन तक बोझ ढोते-ढोते आपको खाली सिर रहना पसद नहीं है। इसलिए आप गाधी-जी को बेवकूफ कहकर अमेरिका की सोना-भरी सदूक अपने सिर पर लादने के फेर में है। लेकिन मैं आपसे कह देना चाहता हूँ कि बदूक के बोझ से सोने से भरी सदूक का बोझ ज्यादा भारी होता है। आप पहले से ज्यादा दब जायँगे।

यही कारण है कि महात्मा गाधी हमसे बार-बार कहा करते थे कि अगर आप आर्थिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं करेंगे, अर्थात् आज जो केंद्रीय उत्पादन के तरीके हैं, उनको बदलकर औद्योगिक विकेंद्रीकरण नहीं करेंगे तो जो कुछ आजादी मिली है, हालों कि वह हमारे लिए पूर्ण स्वराज्य भी नहीं है, उसे भी खो देंगे। यह है हमारी आजादी का खतरा।

क्रय-शक्ति की कमी की समस्या

देश में एक तीसरी समस्या भी विकट रूप धारण कर रही है। वह है, जनता की क्रय-शक्ति का अभाव। अखबारों में देखने को मिलेगा कि कारखानों का माल जमा हो रहा है और कारखानेदार विदेशों में माल भेजने के लिए सहूलियत माँग रहे हैं। लेकिन साथ-ही-साथ देश के असंख्य नर-नारी उपभोग की वस्तुओं के बिना परेशान हैं। अर्थशास्त्र के पण्डितों से पूछने पर वे कहते हैं कि देश में क्रय-शक्ति का अभाव हो गया है। उनके पास इतनी सम्पत्ति नहीं रह गयी है, जिससे वे माल खरीद सकें। इसका मतलब यह है कि देशभर में फैली करोड़ों की आबादी सम्पूर्ण रूप से संपत्तिहीन हो गयी है।

देश में गरीबी क्यों ?

अर्थशास्त्र के पंडितों का कहना है कि जबतक मुल्क की जनता में खरीदने की ताकत नहीं पैदा होगी, तबतक देश आगे नहीं बढ़ सकता। सवाल है कि आखिर यह दरिद्रता क्यों ? एक जमाना था कि देश में संपत्ति भरपूर थी। देशभर के लोगों के पास तरह-तरह की संपत्ति मौजूद थी, लेकिन दो सौ वर्ष के विदेशी शोषण के कारण वह सूख गयी। छिछला तालाब बीच में थोड़ा गहरा और चारों ओर मिट्टी से उभरा हुआ होता है। वर्षा ऋतु में जब तालाब भर जाता है, तो ऊपर से समतल दिखाई देता है। नीची और ऊँची, सभी जगहों में पानी भरा रहता है, लेकिन बैसाख और जेठ में जब तालाब सूख जाता है, तो बीच में थोड़ा पानी रह जाता है और चारों ओर का पानी सूखकर नीचे की जमीन फट जाता है।

इसी प्रकार, पुराने जमाने में भी देश मे गरीब और अमीर दोनों थे। देश संपत्ति से भरा हुआ था तो गरीब-अमीर सभी सुखी थे, सभी संपत्तिवान् थे। ऊपर से बराबर दीखता था। लेकिन विदेशी शोषण से आज जब संपत्ति का तालाब सूख गया है, कुछ थोड़े-से अमीरों के पास सम्पत्ति रह गयी है और बाकी विशाल जनता सूखकर दरिद्र हो गयी है, प्यास से उसकी छाती फट रही है। ऐसी स्थिति में देश की क्या हालत होगी? तालाब के किनारे बैठी जनता की छाती जब प्यास से फटती रहेगी, तो क्या आप समझते हैं कि वह बैठे-बैठे बीच के पानी की ओर देखती रहेगी? प्यास बुझाने के लिए निश्चय ही वह पानी की ओर दौड़ेगी और बीच के लोग पानी को बचाने के लिए उसे रोकेंगे। इस तरह उसी पानी पर बीच-वालों और किनारेवालों में जोरों का संघर्ष होगा। इस संघर्ष से सारा पानी कीचड़ हो जायगा और दोनों में से किसीकी प्यास न बुझेगी।

बुद्धिमानी का तकाजा

ऐसी स्थिति में बीच के लोगों में यदि बुद्धि होगी तो वे अपने पानी में से थोड़ा-थोड़ा किनारेवालों के ओठ पर रखेंगे, उन्हें ताजा करेंगे और बाद को सब मिलकर तालाब को चारों ओर से गहरा कर देंगे, ताकि भविष्य में ऐसी परिस्थिति पैदा न हो सके। जिन लोगों के पास आज कुछ संपत्ति रह गयी है, उनमें यदि बुद्धि होगी तो वे अपनी संपत्ति के हिस्से चारों तरफ उन लोगों को बाँटेंगे जो संपत्तिहीन, लेकिन श्रम करनेवाले हैं और दरिद्रता से तड़प रहे हैं। इससे श्रम और संपत्ति भरपूर हो जायगी और क्रयशक्ति के अभाव में आज देश की जो

दयनीय दशा हो रही है, उससे मुल्क छुटकारा पा सकेगा। यही कारण है कि संत विनोबा देश के सामने एक तीसरा आन्दोलन रख रहे हैं, जिसका नाम 'सपत्तिदान-यज्ञ' है। यह भी केवल दान पुण्य या त्याग का आन्दोलन नहीं है; बल्कि सम्पत्ति-दान-यज्ञ आप अगर विचार करेंगे तो मालूम होगा कि यह भी स्वार्थ-रक्षा का ही आन्दोलन है।

भूदान से विश्वशान्ति

इस प्रकार देश में जो मुख्य समस्याएँ खड़ी हैं, उनका समाधान विनोबा द्वारा संचालित भूदान-यज्ञ-आन्दोलन से ही हो सकता है। यह यज्ञ केवल देश की ही नहीं, बल्कि विश्व की समस्याओं के समाधान का एकमात्र उपाय है। पण्डित जवाहरलालजी चीन, रूस और दूसरे मुल्कों की यात्रा करते हैं तो उनके दर्शन के लिए और उनकी वाणी सुनने के लिए विश्व के कोने-कोने से जनता उमड पड़ती है। इसका क्या कारण है? क्या ये लोग व्यक्तिगत रूप से पंडित जवाहरलाल नेहरू को पहचानते या जानते हैं? ऐसी बात नहीं है। उनका स्वागत इसलिए भी नहीं होता कि वे सैनिक तथा आर्थिक दृष्टि से किसी शक्तिशाली मुल्क के प्रतिनिधि हैं। लोग उनके प्रति इसलिए आकृष्ट होते हैं कि वे ससार को महात्मा गांधी का संदेश सुनाते हैं। वे शान्ति और अहिंसा की बात करते हैं। केवल बात ही नहीं, बल्कि वे जिस मुल्क के प्रतिनिधि हैं, वह अपनी आंतरिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए शान्ति का मार्ग अपनाये हुए है। वैसे तो आज दुनिया के सभी राष्ट्र-नायक शान्ति के लिए चिल्ला रहे हैं। वे हिंसा को छोड़ना चाहते हैं। वे इसलिए शान्ति नहीं चाहते कि तात्त्विक दृष्टि

से अहिंसा के कायल हैं। ऐसा होता तो आज दुनिया की यह दशा न होती कि लोग खोज तो करते शान्ति की और जोरों से तैयारी में लगे रहते युद्ध की। आज शान्ति की खोज इसलिए है कि आज की युग-समस्या के समाधान में हिंसा-मुक्ति अनिवार्य हो गयी है, क्योंकि उसके बिना मनुष्य की आत्मरक्षा खतरे में पड़ गयी है। आदमी सबसे पहले जिन्दा रहना चाहता है, फिर दूसरी बात सोचता है।

मनुष्य भस्मासुर बना

पढ़े-लिखे लोगों में आज एक फैशन चल गया है। पुराने जमाने में लोग बात-बात में भगवान् का नाम लेते थे और आज हर व्यक्ति चाहे कुछ समझे या न समझे, विज्ञान का नाम लेता है। कोई बात कहो, झट कहेगा कि क्या यह वैज्ञानिक है? तो विज्ञान इस युग का महादेव है। विज्ञान के प्रचण्ड प्रताप ने आज दुनिया को अभिभूत कर रखा है। मनुष्य अपने इष्ट की प्राप्ति के लिए विज्ञान की आराधना करते हैं। और उन्हें अपनी आकांक्षा का वरदान मिलता है। राज्य और पूँजी के प्रचण्ड सगठन के कारण शक्ति-सग्रह ही लोगों की आकांक्षा हो गयी है और राष्ट्र का मुख्य ध्यान युद्ध में विजयी होने की ओर चला गया है। विज्ञान की उपासना से उन्हें वरदान के रूप में भस्म करने की शक्ति प्राप्त हुई है, अर्थात् इस युग के महादेव के वरदान से मनुष्य आज भस्मासुर बन गया है।

विज्ञान और हिंसा

पौराणिक-कथा में भस्मासुर का जो जिक्र है, उसके बारे में आप सबको मालूम ही है। वह अन्ततोगत्वा अपने ही सिर पर

साथ रखकर भस्म हो गया। आज का मनुष्य भयभीत है। विज्ञान के फलस्वरूप एटम बम, हाइड्रोजन बम आदि भयंकर शस्त्रों का जो आविष्कार हुआ है, उसका कारण वह समझ रहा है कि इस वैज्ञानिक युग में समस्याओं के समाधान के लिए अगर हिंसा का प्रयोग किया गया तो समस्त मानव समाप्त हो जायगा। इसलिए वह महसूस कर रहा है कि आज के युग में विज्ञान और हिंसा को एक साथ नहीं रखा जा सकता। आत्मरक्षा के लिए दो में से एक को चुनना ही पड़ेगा। स्वभावतः सारा संसार यह समझ रहा है कि मानव-कल्याण के लिए विज्ञान को अपनाकर हिंसा को त्यागना अनिवार्य है।

हिंसा और अहिंसा

लेकिन जहाँ मनुष्य रहेगा, वहाँ कभी-न-कभी अन्याय, झगड़ा, मतभेद आदि चलता ही रहेगा और उसे निपटाना ही होगा हजारों वर्षों से इस प्रकार के मामले निपटाने के लिए मनुष्य हिंसा का मार्ग ही अपनाता रहा है। उसे उसी मार्ग की पहचान है। जबतक उसके बदले में उसे दूसरा मार्ग मिल नहीं जायगा, तबतक उसे पुराना मार्ग छोड़ने की हिम्मत नहीं हो सकती। आज विश्व के सामने दूसरा कोई सफल तथा सक्रिय मार्ग स्पष्ट रूप में उपस्थित नहीं है। आज लोगों का सोचना उचित है अन्तर्राष्ट्रीय टेबुल पर जब विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि बैठते हैं, तो यह बात करते हैं कि इस वैज्ञानिक युग में युद्ध नहीं होना चाहिए: लेकिन अपने राष्ट्र की आंतरिक समस्या के समाधान में हिंसा ही एकमात्र मार्ग है, ऐसा वे मानते हैं। परन्तु ऐसा हो नहीं सकता। राष्ट्र के अन्दर छोटी-छोटी समस्याओं के समाधान के लिए जिन्हें अहिंसा की शक्यता

पर यकीन नहीं है, वे अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए अहिंसा की शक्ति पर विश्वास कर ही नहीं सकते। मान लीजिये, आपको किसी छोटे नाले या नदी को पार करना है। तैरकर उसे पार करने की शक्ति आपमें नहीं है। उसके लिए पुल ही बनाना चाहिए। तो क्या समुद्र पार होते समय आपको यह यकीन होगा कि आप तैरकर पार हो जायँगे? ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

अहिंसक मार्ग

अतएव अगर आज की दुनिया में शान्ति स्थापित करनी है और इस वैज्ञानिक युग में इन्सान के जिन्दा रहने के लिए वह आवश्यक है, तो राष्ट्र की हर समस्या के समाधान का अहिंसक मार्ग ढूँढ़ निकालना ही पड़ेगा। भूदान-यज्ञ आंदोलन संसार के सामने ऐसा मार्ग उपस्थित करता है। यही कारण है कि विनोबा कहते हैं कि विश्वशान्ति के लिए यह आवश्यक है कि सन् '५७ तक भूदान-आंदोलन सफल हो, क्योंकि इसके बिना दुनिया को अहिंसा की शक्ति का यकीन दिलाने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। आज विश्व की जो हालत है, उससे अगर विश्व को अहिंसक शक्ति पर विश्वास न जम जाय तो निराश दुनिया हिंसा पर उतारू हो जायगी। अगर ऐसा हुआ तो संसार ध्वस्त हो जायगा।

जमाने की चुनौती

आज का जमाना मानव के सामने एक चुनौती पेश कर रहा है। मनुष्य को चुनौती स्वीकारकर उसका जवाब देना है। भूदान-यज्ञ उसीका जवाब है। मैं यही कह रहा था कि भूदान-

बल्कि उसकी वृद्धि में ही लगा रहता है, चाहे वह अधिकार मिलने से पहले कितना ही तपस्वी क्यों न रहा हो। यह बात केवल कलियुग के लिए ही लागू हो, ऐसा नहीं है। त्रिकाल और त्रैलोक्य के लिए यह बात सत्य है। आप लोगों ने पुराणों में पढ़ा है कि त्रैलोक्य के सबसे अधिक तपस्वी को ही इन्द्रासन मिलता था। लेकिन इन्द्रासन मिलते ही इन्द्र की प्रवृत्ति ससार-भर के तपस्वियों की तपस्या भग करने में लग जाती थी। जिसने जीवनभर इतनी कठोर तपस्या की, उसको तपस्या से नफरत क्यो हुई ?—इसलिए कि इन्द्रासन पाते ही उसकी चेष्टा यह रही कि इस आसन पर दूसरे का कब्जा न होने पाये अर्थात् जिसे एक बार अधिकार मिल जाता है वह हमेशा उस अधिकार को अपने हाथ में ही कायम रखने की कोशिश करता है। इन्द्र जैसा वह भी लालच और दमन का अस्त्र इस्तेमाल करेगा। पुराने जमाने में तपस्या भग करने के लिए इन्द्रासन की ओर से अप्सराएँ भेजी जाती थीं। आजकल अप्सरा के स्थान पर 'अफसरी' का प्रलोभन दिया जाता है, केवल यही फर्क है।

शिव और ताण्डव

इसलिए पुराने जमाने में जहाँ जनता के शासन के लिए इन्द्रासन की आवश्यकता समझी गयी थी, वहीं जनता की रक्षा के लिए शिव की भी प्रतिष्ठा की गयी थी। शिव तपस्वी होते हुए भी इन्द्रासन का लोभ नहीं करते थे, बल्कि गणों को तकलीफ होती थी तो सारे गणों के साथ शिव भी ताण्डव करते थे। इस तरह इन्द्र के एकाधिपत्य का विस्तार नहीं हो पाता था। वस्तुत आज ससार में गणों के बीच शिव का अभाव होने के कारण ही

जनता तानाशाही की वज्रमुष्टि के अन्दर निरंतर दबती चली जा रही है। अतः भारत को यदि अपना स्वराज्य कायम करना है तो उसे जनता मे शिव की ताण्डवी यानी विद्रोही शक्ति का संस्कार और संचार करना होगा, ताकि निरंतर विद्रोह करने की ताकत बनी रहने के कारण अधिकारी के दुरुपयोग का प्रतिरोध और जन-सत्ता की रक्षा की जा सके।

जान और आन

अब प्रश्न यह है कि ऐसा हो कैसे ? जनता अपनी सत्ता की रक्षा के लिए चाहे जितनी व्याकुल हो, अगर परिस्थिति साथ नही देगी तो वह विद्रोह नहीं कर सकेगी। साधारण जनता को जान और आन, दोनों ही प्रिय हैं। लेकिन जब जान और आन दोनों में से एक को ही चुनने का प्रश्न आयेगा, तो वह आन को छोड़कर जान की रक्षा की ही फिक्र करेगी। यह सही है कि ससार में बहुत-से ऐसे लोग हो गये हैं, जिन्होंने जान देकर आन की रक्षा की है; लेकिन ऐसे लोग विरले होते हैं। उनके नाम इतिहास के पन्नो पर लिखे होते है। उन्हें लोग 'शहीद' कहते और उनकी पूजा करते हैं। मतलब यह कि आन पर मरनेवाले अपवाद होते हैं। साधारण लोग जान को खतरे मे डालकर अपनी स्वतंत्रता के लिए व्याकुल नहीं होते। अतः अगर देश की आर्थिक व्यवस्था ऐसी है, जिसके कारण जनता की प्राण-रक्षा के साधन अधिकारी के हाथ में हो तो अधिकार के दुरुपयोग के मौके पर जनता उसके खिलाफ विद्रोह नहीं कर सकेगी, लोकशाही धीरे-धीरे खत्म हो जायगी और देश में तानाशाही की जड़ मजबूत होगी।

जीवन-साधन, पूँजी और श्रम

स्पष्ट है कि अगर जनता की आर्थिक जिन्दगी पूँजी पर आश्रित हो, तो जिसके कब्जे में पूँजी रहेगी उसीके कब्जे में लोगों की जान रहेगी। अगर पूँजी पूँजीपति वर्ग के हाथ में होगी तो वह एक वर्ग की तानाशाही होगी। और अगर उसका राष्ट्रीकरण हो तो एक-दलीय तानाशाही प्रतिष्ठित होगी। तानाशाही चाहे जिस नमूने की हो, वह लोकशाही नहीं होगी, यानी वह स्वराज्य नहीं होगा। यही कारण है कि महात्मा गांधी हमेशा विकेन्द्रित और स्वावलम्बी उद्योगों की बात करते थे। वे चाहते थे कि जनता के जीवन के मूल साधन पूँजी पर आश्रित न होकर श्रम पर आश्रित हों, यानी सारे उत्पादन के साधन उन्हींके हाथ में रहें, जो उन उत्पादनों पर स्वयं श्रम करते हों।

भूमि-दान और स्वार्थ-रक्षा

आप जानते हैं कि प्रत्येक उद्योग का मूल स्रोत भूमि है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि भूमि उन्हींके हाथ में रहे जो भूमि पर श्रम करते हैं। इसके बिना गांधीजी के कहे मुताबिक देश में असली स्वराज्य यानी लोकराज्य कायम नहीं होगा और बिना सच्चे लोकराज्य के मुल्क की परेशानी का निराकरण नहीं हो सकता। अगर मुल्क की परेशानी दूर नहीं होगी तो भूमिवान् भी परेशान होंगे, वे अलग से अपने को बचाकर नहीं रख सकेंगे। इसीलिए मैं कहता था कि भूमिदान की पुकार केवल त्याग की पुकार न होकर स्वार्थ का भी तकाजा है।

हजूर और मजूर

देश के भूमिवानों का ध्यान मैं वर्तमान युग की एक विशेष संकटपूर्ण परिस्थिति की ओर खींचना चाहता हूँ। दुनिया में वर्ग-संघर्ष की आग जगह-जगह धधक रही है। इस दिशा में भारत की स्थिति किसी मुल्क से अच्छी नहीं, खराब ही है। यह तो आप साफ देख रहे हैं कि आज की दुनिया दो निश्चित श्रेणियों मे विभाजित हो गयी है—एक वह जो शरीर-श्रम से उत्पादन करके खाती है, दूसरी वह जो दलाली करके खाती है। उत्पादन करके खानेवाले को लोग 'मजूर' कहते हैं और दूसरे को कहते हैं 'हजूर'। इस तरह हजूर और मजूर के दो वर्ग बन गये हैं। हजूर लोग मजूरों का शोषण करते हैं। यह शोषण कैसे होता है, एक छोटी-सी कहानी के जरिये मैं आपको बताना चाहता हूँ। आपने बन्दर और बिल्ली की मशहूर कहानी सुनी है। दो बिल्ली मेहनत करके रोटी लायीं। बन्दर ने उस रोटी के बँटवारे का इन्तजाम किया। इतना माकूल इन्तजाम किया कि बिल्ली के पेट के लिए एक टुकड़ा भी रोटी नहीं बची। इसी तरह संसारभर के सारे हजूर लोग इन्तजाम के बहाने मजूरों का शोषण कर रहे है।

हजूर बनाने के कारखाने

शोषण की यह परिस्थिति अंग्रेजी शासन के कारण भारत मे विशेष रूप से प्रकट हुई है। अंग्रेज आये हिन्दुस्तान का शोषण करने के लिए; लेकिन इतने बड़े मुल्क का शोषण अकेले अपने आप नहीं कर सकते थे। गाँव-गाँव और घर-घर जाने के लिए उन्हें दलालों की जरूरत थी; इसलिए उन्होंने देश के जितने

बाबू लोग थे, उन्हें संगठित करके शोषण का एजेण्ट बनाया; लेकिन जितनी तादाद में वे मौजूद थे, उतने से उनका काम नहीं बनता था। उन्होंने हजूर यानी बाबू बनाने का कारखाना खोलने की बात सोची। देश में जो गुरुकुल की शिक्षा-पद्धति थी, जिसमें गुरु के घर में परिश्रम के साथ-साथ विद्यालाभ की प्रथा थी, उसे समाप्त किया और ऐसी शिक्षा-पद्धति चलायी जिससे शिक्षित व्यक्ति निश्चित रूप से हजूर बन जाय। इनके चलाये हुए कारखानों (स्कूल और कॉलेज) में अगर मजूर का बेटा भी चला जाता है, तो वह भी हजूर होकर ही निकलता है। सब कारखानों का यही स्वधर्म है। इसके अलावा अंग्रेजों को सस्ते हजूर चाहिए थे, इसलिए उन्होंने इनकी पैदावार बढ़ानी शुरू की, ताकि अत्यधिक तादाद हो जाने पर उन्हें कम दाम में बाबू मिल सकें। आज अंग्रेजों के चले जाने पर भी उसी प्रकार और उसी रफ्तार से हजूर बनाने के कारखानों की तादाद हम बढ़ाते चले जा रहे हैं। आखिर ये सारे बाबू जायँगे कहाँ? वे मजूरों के कंधे पर जाकर बैठेंगे, क्योंकि एक भी दाना पैदा करके खाने की शक्ति उनमें नहीं रह गयी है। इसके अलावा भी अंग्रेजों ने अपने और जनता के बीच दीवार खड़ी करने के लिए भूमि की खरीद-बिक्री की प्रथा चलाकर बहुत बड़ी तादाद में भूमि पर अनुत्पादक बाबू वर्ग का उत्पादन किया है। इस प्रकार चारों तरफ से बढ़ते हुए हजूर श्रेणी का बोझ इतना ज्यादा हो गया है कि आज का मजूर उसके नीचे दबकर त्राहि-त्राहि कर रहा है।

हजूर बनाम अमर-बेल

अत्यधिक संख्या में हजूरों की वृद्धि होने से केवल मजूर ही परेशान नहीं हैं। हजूरों की हालत भी दिन-दिन

खराब होती चली जा रही है। पुराने जमाने में भी हजूर रहते थे, लेकिन उनकी संख्या मजूरों के अनुपात में बहुत थोड़ी थी। अतः शोषण के लिए उन्हें काफी रस मिल जाता था। लेकिन आज हजूरों का अनुपात इतना ज्यादा बढ़ गया है कि उन्हें मजूरों के शरीर से पूरा-पूरा पोषण नहीं मिल रहा है। परिणामतः वे सूखते जा रहे हैं। इस प्रकार आज की सामाजिक परिस्थिति यह है कि हजूर के बोझ से मजूर दबकर मर रहे हैं और पूरा-पूरा पोषण न मिलने से हजूर सूखकर मर रहे हैं। अगर यही स्थिति कुछ अर्से तक चलती रही तो हजूरों के बोझ से मजूर दबकर मरेंगे और मजूर के मरने से हजूर सूख कर मर जायेंगे; अर्थात् सारी सृष्टि सर्वनाश की परिस्थिति में पहुँच जायगी। लेकिन सृष्टिकर्ता अपनी सृष्टि को मरने नहीं देगा। आप लोग प्रेम से अपने घर में बाग लगाते हैं। जो पेड़ आप लगाते हैं, वह जमीन से रस खींचकर बढ़ता है। कभी-कभी इन पेड़ों पर अमरबेल लग जाती है। जब वह थोड़ी होती है तो आप उसकी फिक्र नहीं करते; बल्कि हरे पेड़ पर पीले रंग का पुट देखने में शायद अच्छा ही लगता होगा। लेकिन जब वही अमरबेल फैलकर सारे पेड़ को घेर लेती है और उसे सुखाना चाहती है तो आप क्या करते हैं? आप पेड़ पर से सारी अमरबेल को निकाल देते हैं जिससे आपका बगीचा फिर से हरा-भरा हो जाय। उसी तरह सृष्टिकर्ता की सृष्टि में जो लोग जमीन पर से पैदा करके गुजारा करते हैं, उस पर हजूर लोग अमरबेल जैसे फैल गये हैं जिससे सृष्टि का नाश ही होना चाहता है। जिस तरह आप बगीचे के पेड़ पर से अमरबेल को निकालकर बगीचे को बचाते हैं, उसी तरह सृष्टिकर्ता भी मजूरों के कंधे पर से हजूरों को हटाकर अपनी सृष्टि की रक्षा करेगा ही।

उन्मूलन और विलीनीकरण

यही कारण है कि आज के जमाने की एकमात्र माँग वर्गहीन राम-राज्य कायम करने की है। लेकिन प्रश्न यह है कि यह हो कैसे? दो ही तरीके हैं—एक तरीका यह है कि मजूर लोग अपनी हँसिया से हजूरों की गर्दन काट दें, ताकि दुनिया में मजूर ही रह जायँ। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि देश में ऐसी क्रांति फैले जिससे हजूर लोग मजूर बनकर मजूर-समाज में अपने को विलीन कर सकें। एक है बाबू लोगों के उन्मूलन का तरीका और दूसरा है उनके विलीनीकरण का। एक वर्ग-संघर्ष का और दूसरा वर्ग-परिवर्तन का।

अब आपको सोचना होगा कि इन दोनों मे से आप कौन-सा तरीका अपनायेंगे। पहले उन्मूलन या कत्ल के तरीके पर विचार कीजिये। आप जानते हैं कि जिसके घर में चोरी होती है, वह सोया होता है और जो चोरी करता है वही जागा रहता है। इस तरह स्पष्ट है कि मजूर बेहोश है यानी सोया हुआ है और हजूर जागा हुआ है। सोया हुआ मजूर तो हँसिया नहीं चला सकता, उसे जागना होगा। लेकिन इन बेहोश, सोये हुए मजूरों को जगायेगा कौन? निस्सदेह जो लोग पहले से जागे हुए हैं वे ही इसे कर सकते हैं, अर्थात् हजूर वर्ग के कुछ लोगों को यह काम करना होगा।

इतिहास में यह देखा गया है कि जो लोग इस काम को करते हैं, वे मजूरोंको अपनी व्यवस्था और सञ्चालन की कला सिखाये बिना दूसरे मोटे हजूरों को मारने का नारा लगाते हैं। वे कहते हैं कि आत्मव्यवस्था आदि प्रवृत्ति सिखाने के चक्र में मजूरों के जोश ठंढे हो जायँगे और उनमे हँसिया चलाने का उत्साह नहीं

रह जायगा। अतः वे केवल हँसिया चलाने की ही बात करते हैं। फिर जब हजूर वर्ग का नाश हो जाता है तो मजूरों को ललकारनेवाले हितैषी हजूर यह कहकर कि 'मजूर लोगों में फिल-हाल आत्मव्यवस्था की योग्यता पैदा नहीं हुई है यानी वे नाबा-लिग हैं,' अपने आप मजूरों के संरक्षक बन बैठते हैं और कहते हैं कि मजूरों के बालिग होने पर उन्हें व्यवस्था सौंप दी जायगी।

इस तरह हमने इतिहास के पन्नों में देखा है कि जब कभी क्रांति के नाम से कत्ल का आन्दोलन चला है तो आन्दोलन चलते समय **"मजूरों का राज्य"** का नारा लगता है; आन्दोलन के बाद जो लोग राज्य सँभालते हैं, वे इस नारे को थोड़ा बदलकर **"मजूर के लिए राज्य"** कहने लगते हैं। इसके बाद यही हजूर श्रेणी के लोग थोड़े-से चतुर मजूरों को साथ मिलाकर जब अपना दल मजबूत कर लेते हैं तो अपने प्रतिद्वन्द्वियों को गोली मारकर एकच्छत्र अधिकार प्राप्त करके **"मजूर पर राज्य"** करने लगते हैं, अर्थात् व्यवहारतः वही हजूर वर्ग अपना वेष बदलकर मजूरों की छाती पर बैठा ही रहता है।

इस तरीके में केवल व्यावहारिक दोष है, सो बात नहीं; यह अवैज्ञानिक भी है। आप जानते हैं कि विज्ञान का प्रथम नियम यह है कि किसी चीज का नाश नहीं, केवल रूप-परिवर्तन होता है। यही कारण है कि रूस के मजूरों ने जब अपनी छाती पर बैठे हुए पूँजीपतिरूपी हजूरों को कत्ल किया तो उन हजूरों ने पूँजीपति का रूप छोड़कर दलपति के रूप में मजूरों की छाती पर पुनः आसन जमाया। चूँकि एक बार मजूरों ने उसे उखाड़ दिया था, इसलिए इस बार उसने और भी गहरा आसन जमाया है। सदा, सर्वत्र ऐसा ही होता रहा है और होता रहेगा।

इतिहास का सारा चक्र ऐसे ही उन्मूलन, कत्ल और रूप-परिवर्तन की गवाही देता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि कत्ल के तरीके से कोई नतीजा नहीं निकलनेवाला है, बल्कि हालत पहले से भी बुरी रहेगी।

कत्ल का तरीका अवाञ्छनीय भी है। उससे आपके उद्देश्य की भी पूर्ति नहीं होनेवाली है। आखिर आप वर्गहीन समाज क्यों बनाना चाहते हैं? इसीलिए न कि संसार से संघर्ष मिटकर शान्ति स्थापित हो। प्रकृति का नियम यह है कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और क्रिया-प्रतिक्रिया के घात-प्रतिघात अनन्तकाल तक चलते हैं। कत्ल हिंसा की ही प्रतिक्रिया है और हिंसा की प्रतिक्रिया प्रतिहिंसा होती है। इससे हिंसा-प्रतिहिंसा के घात-प्रतिघात अनन्त काल तक चलते रहेंगे तो आप किस काल में जाकर शान्ति की स्थापना करेंगे? इस प्रकार आप देखेंगे कि कत्ल का तरीका अव्यावहारिक, अवैज्ञानिक और अवाञ्छनीय है। इससे अनन्तकाल तक उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती। अतएव आपको दूसरा तरीका यानी गांधीजी का तरीका अपनाना होगा।

गांधीजी का वर्ग-परिवर्तन का तरीका

गांधीजी ने वर्ग-परिवर्तन का वैज्ञानिक तरीका हमें बतलाया है। वे चाहते थे कि हजूर लोग अपना वर्ग-परिवर्तन कर मजूरों में विलीन हो जायँ। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को कुछ-न-कुछ उत्पादक श्रम करने को कहते थे, ताकि लोगों का झुकाव वर्ग परिवर्तन की ओर हो जाय। वे कहते थे कि जो लोग सूत न कातें उनको कपड़ा पहनने का अधिकार नहीं है। चर्खा-संघ में उन्होंने यह नियम बनाया कि दो पैसे का सूत कातकर देने पर

ही खादी मिलेगी। फिर उन्होंने बम्बई और कलकत्ता तक के लोगों से कहा कि जबतक अपने हाथ से अनाज पैदा नहीं करोगे तबतक आपको खाने का अधिकार नहीं। यह पूछने पर कि 'जिसके घर में कतई जमीन नहीं है, वह क्या करे?' उन्होंने कहा, 'गमले में ही अनाज पैदा करो।' यह तो स्पष्ट है कि दो पैसे का सूत कातने या गमले मे अनाज पैदा करने से अन्न या वस्त्र की समस्या हल नहीं होनेवाली थी। फिर भी गांधीजी ने ऐसा क्यो कहा? वे चाहते थे कि क्षणिक रूप से ही सही, प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादक श्रम करके श्रमिक वर्ग के साथ आत्मीयता स्थापित करनी ही होगी, ताकि विलीनीकरण की दिशा मे लोक-मानस तैयार हो। साथ ही उन्होंने नौजवानों से कहा कि आप शरीर-श्रम से अपना गुजारा करते हुए देहातो मे बैठ, ताकि मजूर बनकर मजूरों का वास्तविक नेतृत्व कायम कर सकें और समग्र ग्राम-सेवा के कार्यक्रम द्वारा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करें तथा आन्तरिक व्यवस्था के लिए उन्हें स्वावलम्बी बनायें। जिस व्यवस्था तथा वितरण का लाभ लेने के बहाने हजूर लोग मजूरों के नेता बनकर मजूरों का शोषण करते हैं, मजूरों में उसे इनकार करने की ताकत पैदा हो। ऐसा करने से हजूरों को सेवा के बहाने मजूरों के शोषण का मौका नहीं मिलेगा, तो परिस्थिति की मजबूरी में वे स्वयं अपने श्रम से पैदा करके खाने लगेंगे अर्थात् वे मजूर श्रेणी में विलीन हो जायेंगे।

अहिंसक क्रान्ति सिर्फ परिस्थिति की मजबूरी पैदा करके ही नहीं होती: विवेक द्वारा जन-मानस में परिवर्तन करना भी आवश्यक है। इसीलिए महात्मा गांधी जहां हजूर वर्ग के विवेक से अपील करके उनके मानस मे परिवर्तन लाना चाहते थे, वहीं

देश की शिक्षा-पद्धति में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन चाहते थे। उन्होंने देखा—जो पहले से हजूर बन गये हैं, उनका तो धीरे-धीरे परिवर्तन होगा, लेकिन आगे नया हजूर न बने, इसका प्रबन्ध तो पहले करना चाहिए। उन्होंने हजूर बनानेवाले कारखानों यानी स्कूलों और कालेजों को तुरन्त बन्द करने तथा उनके बदले देशभर में 'नयी तालीम' (नव शिक्षा) चलाने को कहा। उन्होंने नयी तालीम' में उत्पादन की प्रक्रिया को ही शिक्षा का माध्यम बनाया। ऐसा करने से मजूरों की संतान जब शिक्षा-काल में अभ्यास करने आयेगी तो उन्हें अपना कर्म छोड़ना नहीं पड़ेगा और हजूर की संतान भी ऐसे शिक्षा क्रम से निकलते-निकलते पूर्ण रूप से मजूर बनकर ही निकलेगी, अर्थात् आगे आनेवाली पीढ़ी का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित तथा वैज्ञानिक मजूर बन जायगा और वर्ग-विषमता का ज्वालामुखी शान्त हो जायगा।

हमें इतनी बात बताकर महात्मा गांधी चले गये, लेकिन हमने इस क्रान्ति की ओर ध्यान नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि इस बीच वर्ग-विषमता की आग जोरों से धधक उठी। अब तत्काल उसे शान्त किये बिना सर्वनाश रुकता नहीं दिखाई देता। इसी भयंकर मौके पर आज विनोबाजी ने भू-दान-यज्ञ का आन्दोलन खड़ा किया है। आज वे भूमि और सम्पत्तिवालों का आवाहन कर रहे हैं कि वे भूमि और सम्पत्ति-दान से अपनी हजूर श्रेणी की स्थिति को छोड़कर मजूर यानी उत्पादक-श्रेणी में मिल जायँ। विनोबाजी चाहते हैं कि यह काम सन् '५७ के अन्दर हो जाय, क्योंकि आज का जमाना सोचने के लिए फुर्सत नहीं देनेवाला है। भूमिपतियों को पुकार-पुकारकर वे कह रहे हैं कि "भाइयो, भूमि की सब संतानें हैं। उसका

पति कोई नहीं है। संतान का धर्म है माता की सेवा करना और उसकी गोद में लोटना। इससे आपको अपने हाथ से काम करना होगा—आपके सफेद कपड़े मिट्टी से रंगेंगे; लेकिन अगर अपने आपको बचाना है तो यह काम करना ही होगा।"

वर्ग-परिवर्तन या वर्ग-संघर्ष

हम जब सफेदपोश बाबू लोगों को विनोबा का संदेश सुनाने जाते हैं तो कोई हमसे नाराज होते हैं और कोई हँसी उड़ाते हैं। वे कहते हैं—"तुम्हारे गांधी और विनोबा तो चौपट कर रहे हैं। हमसे कहते हैं कि मिट्टी में जाकर काम करो। भला सब दिन से साफ-सुथरे रहे, सफेद कपड़े पहने रहे, आज आप हमें उस गन्दगी में ढकेलना चाहते हैं।" वे नाक सिकोड़कर कहते हैं कि "इससे तो हमारे कपड़ों में मिट्टी लग जायगी।" लेकिन वे समझते नहीं हैं। वे बेहोश हैं, आप लोगों को उन्हें होश में लाना होगा। उन्हें परिस्थिति का दिग्दर्शन कराना होगा। उन्हें कहना होगा कि आज का जमाना मजूरों के कंधे पर हजूरों को बर्दाश्त करने को तैयार नहीं है। वर्ग-परिवर्तन या वर्ग-संघर्ष, दो में से एक को चुनना होगा। अगर विनोबा के बताये हुए तरीके से वर्ग-परिवर्तन के आन्दोलन को तत्काल सफल न बनाकर आप अपने सफेद कपड़ों को मिट्टी लगने से बचाने के चक्कर में पड़े रहेंगे, तो यह कपड़ा शायद मिट्टी लगने से बच जाय, लेकिन उसका रंग सफेद नहीं, खून से लाल हो जायगा और वह रंग मिट्टी के रंग से भी ज्यादा कष्टदायी होगा।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि विनोबा का सारा आन्दोलन दान और दया का नहीं, हजूरों की स्वार्थ-रक्षा का आन्दोलन है। उनको आज गंभीरता से सोचना होगा। त्याग की बात छोड़कर

उन्हें आज अपना परता बैठाना होगा। मिट्टी और खून, दोनों में से जिसमें परता बैठे, उसे लेना होगा। निस्सदेह, वर्ग परिवर्तन कर मजूर बनने में ही हजूरों का परता बैठेगा।

विनोबा हजूर और मजूर, दोनों के रक्षक!

कुछ लोग गलतफहमी से कहते हैं कि विनोबा तो हजूरों की रक्षा करने का आन्दोलन चला रहे हैं। दोस्तो! यह कोई बुराई नहीं है। वेशक विनोवा का उद्देश्य हजूरों को नाश से बचाना है। सर्वोदय किसी का नाश नहीं चाहता, बल्कि सबकी रक्षा चाहता है। विनोवा सबके उदय के काम में लगे हुए हैं। शोपण के कारण हजूर लोगो का नैतिक पतन हो गया है और शोपित होने के कारण मजूरों का भौतिक पतन हुआ है। इस यज्ञ में आहुति देकर हजूर वर्ग के उत्पादक बन जाने से उसका नैतिक उदय होगा और शोपण खत्म हो जाने से आज के उत्पादक का भौतिक उदय होगा। इस प्रकार विनोवा हजूर और मजूर, दोनों की रक्षा कर रहे हैं।

दुनिया एक ज्वालामुखी पर बैठी हुई है। अगर हम परिस्थिति को प्रकृति पर छोडकर बैठ रहें, तो वर्ग-सघर्ष की आग में दुनिया जलकर खाक हो जायगी और मानवता का सर्वनाश होगा। लेकिन आज सत विनोबा युग की चुनौती की ओर देशवालों का ध्यान खींचते हुए पूछता है—"क्या तुम इस वर्तमान विप-चक्र में ससार का सर्वनाश कर देना चाहते हो? क्या यह सोचते हो कि सर्वनाश के बाद अपने आप सर्वोदय भी होगा? या यह सोचने हो कि अपने पौरुष से सर्वनाश को टालकर तुम सर्वोदय की स्थापना करोगे?"

युग की महान् चुनौती

देश के नौजवानों को समझ लेना चाहिए कि यह युग की महान् चुनौती है। क्या वे इस चुनौती को स्वीकार करके विनोबा की पुकार पर अपने दूसरे काम छोड़ देंगे और तत्काल कम से कम सन् ५७ तक के लिये केन्द्रित और संलग्न होकर इस ज्वालामुखी को शान्त करेंगे या निष्क्रिय होकर ज्वाला के फूटने का इन्तजार करेंगे ? अगर उन्होंने ऐसा किया तो मैं कहना चाहता हूँ कि इतिहास उनको इस कापुरुषता के लिए क्षमा नहीं करेगा। आनेवाली पीढ़ियाँ उनके नाम को यह कह-कर धिक्कारेंगी कि गांधी जैसे महान् युग-पुरुष और विनोबा जैसे उनके महान् पुरोहित की दीक्षा के बावजूद नालायक अपनी गफलत से खुद डूबे और हम सबको भी डुबो कर गये, क्योंकि मुल्क की आजादी को फिर से आर्थिक गुलामी के समुद्र में डुबाने का कलङ्क, देश में लोकशाही के स्थान पर तानाशाही कायम होने की जिम्मेदारी और हिंसा-प्रतिहिंसा के घात-प्रतिघात से दुनिया को अनन्त काल तक जर्जरित रखने की बदनामी इनकी निष्क्रियता को ही होगी।

मुझे आशा और विश्वास है कि भारत के नौजवान अपने ऊपर कलङ्क लगने नहीं देंगे; बल्कि हजारों और लाखों की संख्या में उत्साहपूर्वक भू-दान-यज्ञ की इस महाक्रांति में कूद पड़ेंगे।

••••••

शंका-समाधान

दान का अर्थ

शंका—जब आप भूमि का दान माँगते हैं तब आप जमींदारों का उस पर अधिकार कबूल करते हैं और साथ ही कहते हैं ' सबै भूमि गोपाल की ।"—इसका सामञ्जस्य कैसे होगा ?

समाधान—'दान' शब्द का असली मतलब भीख नहीं है, इसका असली अर्थ सम-विभाजन है। यह बात विनोबाजी ने कई बार देश को समझायी है। चूँकि सब भूमि गोपाल की है, इसलिए उस पर मेहनत करनेवालों का ही हक है, न्याय की यह बात कहकर विनोबाजी भूमिवानो को अपनी भूमि का सम-विभाजन करने को कहते हैं।

क्रान्ति की सही धारणा

शंका—आलोचको का कहना है कि विनोबा का प्रयास सिर्फ भावी क्रान्ति को रोकने का है, यह बात कहाँतक ठीक है ? अगर यह बात सही है तो फिर क्या विनोवा का प्रयत्न सफल होनेवाला है ?

समाधान—विनोबाजी का आन्दोलन तो वर्तमान, न कि भावी क्राति का है। आज तो ससार की परिस्थितियाँ किसी भावी क्रान्ति का इन्तजार नहीं कर सकतीं। इसलिए विनोबाजी ने

इस आन्दोलन को तुरन्त शुरू किया है। जब तत्काल क्रान्तिकारी आन्दोलन से समस्या का समाधान हो जाता है तो निस्सन्देह भावी क्रान्ति की गुंजाइश ही नहीं रहती। ऐसी हालत में अगर विनोबाजी का आन्दोलन समस्या का समाधान करके भविष्य में होनेवाली किसी कल्पित क्रान्ति को रोकता है तो उससे मानव-समाज का अधिक कल्याण होगा, बनिस्बत इसके कि लोग बैठे-बैठे वर्तमान को छोड़कर भावी क्रान्ति का इन्तजार करते रहें। क्रान्ति क्रान्ति के लिए नहीं, वह तो समस्याओं के समाधान के लिए ही होती है।

एक बात आपको समझ लेनी चाहिए कि जब कभी दुनिया की माँग निश्चित रूप से किसी क्रान्ति के लिए होती है तो कोई भी शक्ति उस क्रान्ति को स्थगित नहीं कर सकती। जो लोग भावी क्रान्ति की बात सोचते हैं, वे समझते हैं कि क्रान्तिकारी स्थिति अभी पैदा नहीं हुई है या उनको क्रान्ति की सही धारणा ही नहीं है। क्रान्ति कभी पुरानी किताबों में लिखे सूत्रों के मुताबिक नहीं आती; युग-युग में वह नये ढंग और नये रूप में ही आया करती है। दुर्भाग्य से जो लोग ऐसी समालोचना करते हैं, उनके दिमाग में क्रान्ति का कारण किसी शास्त्रीय सूत्र के अनुसार ही होता है। ऐसे रूढ़िवादी धारणायुक्त व्यक्ति विनोबाजी की नयी क्रांति की बात नहीं समझ सकते, तो यह स्वाभाविक ही है। आप जो भूमि-समस्या के समाधान में लगनेवाले हैं, उनसे मेरा कहना यह है कि आप लोग वर्तमान समस्या के समाधान का नुस्खा प्राचीन पुस्तकों के पन्नों से न ढूँढ़कर स्वयं परिस्थिति का अध्ययन करें और स्वतन्त्र रूप से सोचें तो भूमि-दान-यज्ञ की आधारभूत क्रांति की बात आपकी समझ में आ जायगी। फिर आप देख सकेंगे कि जिस वेग से विनोबा की क्रान्ति देश और दुनिया में

फैल रही है उस वेग से इतिहास में कोई भी क्रान्ति फैल नहीं सकी थी। फिर इसकी सफलता में संदेह कहाँ ?

कानून से यज्ञ का स्थान ऊँचा

शंका—भूमि-दान-यज्ञ का तरीका शताब्दियों का तरीका है। इतने दिन इन्तजार करने से जनता का क्या हाल होगा ? इसलिए तत्काल कानून बनाकर या खूनी क्रान्ति करके समस्या का हल तुरंत क्यों न किया जाय ?

समाधान—आपके सवाल से दीखता है कि आप लोग पुरानी किताबों के बाहर निकल नहीं पा रहे हैं। मैंने अभी आपसे कहा कि इतिहास में किसी भी क्रान्ति की गति इतनी तीव्र नहीं रही। जमीन के पुनर्विभाजन के लिए आप चाहे जो तरीका अपनायें, अन्ततोगत्वा कानून की मुहर उस पर लगेगी ही।

प्रश्न यह है कि वह मुहर कैसे लगे, निस्सन्देह इसके लिए दो तरीके हैं। आज जो कानून बनानेवाले अधिकारी हैं, उन पर असर डालकर उनके द्वारा वह मुहर लगवायी जाय। दूसरा तरीका सत्ता पर कब्जा करके कानून बनाने का है। सत्ता पर कब्जा करने के दो तरीके हैं। एक वोट का वैधानिक तरीका है और दूसरा तरीका है शस्त्र और बल-प्रयोग का। दूसरे मुल्कों में ये दोनों तरीके आजमाये जा चुके हैं। वोट के मामले में ब्रिटेन सबसे जाग्रत देश माना जाता है। फिर भी मजदूर-दल को अधिकार पाने में ‐५ साल लग गये और उस अधिकार को संगठित करने के पहले ही वे फिर गिर गये। मालूम नहीं, उनको सफल होने में और कितने साल लगेंगे। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने शस्त्र और बलप्रयोग का तरीका अपनाया। इस तरीके में

उसे ३७ वर्ष लगे जब कि चीन की राष्ट्रीय सरकार जापानी हमलों और गृह-युद्धों से जर्जर थी।

इनके मुकाबले में भू-दान-यज्ञ के तरीके पर विचार करें। आन्दोलन चले सिर्फ ४ साल हुए हैं। इतने ही अर्से में जमीन की मिल्कियत की मान्यता के पैर उखड़ गये। आपको मालूम है कि आज जमीन की खरीद-बिक्री करीब-करीब बन्द है। सिर्फ ऐसी बात नहीं; जो लोग जमीन के सम विभाजन के सिद्धान्त नहीं मानते थे, उनके भी दिमाग बदल गये। वे अब मानने लगे हैं कि जमीन का पुनर्विभाजन होकर ही रहेगा। यही प्रगति जारी रही, और न रहने का कोई कारण दिखलायी नहीं देता, तो ५ साल के अन्दर भूमि का सम-विभाजन होकर ही रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। अगर आपको कानून की बहुत ज्यादा फिक्र है, तो भी आपको इस बात पर विचार करना चाहिए कि जब इस यज्ञ ने इतने थोड़े समय में ही विधानसभा के अधिकारी तथा विरोधी दल, दोनों पर असर कर लिया है तो कानून में भी कौन-सी देर लगेगी? इस तरह अगर आप गहराई से तुलनात्मक अध्ययन करेंगे तो समझेंगे कि इस यज्ञ से जितनी जल्दी भूमि-समस्या हल होनेवाली है, उतनी जल्दी इतिहास में किसी दूसरे तरीके से नहीं हुई।

भूदान-यज्ञ : समुद्र-मंथन

शंका—भू-दान-यज्ञ को आप सभी पार्टियों के सहयोग से चला रहे हैं। इसमें ऐसे लोग भी शामिल हैं जिनके चरित्र के बारे में जनता को शिकायत है। ऐसी हालत में क्या आप समझते हैं कि यह आन्दोलन जनता का विश्वासभाजन हो सकेगा?

समाधान—सर्वोदय सबका उदय यानी सबकी शुद्धि चाहता है। इसलिए इस प्रकार की शुद्धि के आन्दोलन में सबका शामिल होना सर्वोदय की दृष्टि से अपेक्षित है। जनता यही देखती कि आन्दोलन का मूल स्रोत क्या है। अगर वह स्रोत कल्याणकारी है तो उसमें अगर कुछ दूषित आदमी हों भी, तो वे धुलकर साफ हो जायँगे या किसी एक किनारे में जाकर रुक जायँगे। पवित्र गगा के स्रोत में भी सैकड़ों शहरों की गन्दगी चली जाती है, फिर भी गगा की शोधन-शक्ति में कमी नहीं होती। आपके गाँव के रोजमर्रा के कामों में भी आपको ऐसा ही अनुभव होता होगा। कहीं नाली साफ करने लगते हैं तो शुरू में बदबू ही फैलती है। गन्ने का रस पकाते समय शुरू में मैल ही मैल निकलता है। आपने पुराण में भी पढ़ा होगा कि समुद्र-मंथन में विष के बाद ही अमृत का दर्शन हुआ था। अतएव अगर आपको गन्दगी दिखाई भी दे तो समझना चाहिए कि शुद्धि की सही प्रक्रिया शुरू है।

समुद्र-मथन में सुर और असुर, दोनों लगे थे। कहने का मतलब भूदान यज्ञ मानव के परिशोधन की प्रक्रिया है। इसमें यदि आपको विष और असुर नजर भी आ रहे हों तो विश्वास रखें कि वे सब शुद्ध होकर सुधा और सुर बन जायँगे और बन भी रहे हैं। देश के भिन्न-भिन्न दल, जो अब तक एक-दूसरे के शत्रु बने थे, प्रेमपूर्वक एक होकर, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करने लगे हैं। शोषक और शोषित का दुराव भूदान-यज्ञ की प्रगति के साथ स्वत. मिटता जा रहा है। क्या इस स्वय-सिद्ध तथ्य को देखकर भी आपको शका की गुंजाइश रह ही जाती है?

सफलता की दूरी बाधक नहीं

शंका—क्या आपके कहने से सबका हृदय-परिवर्तन हो जायगा? अगर हो भी जाय तो जबतक ऐसा नहीं होता तब तक जो लोग भूखे मर रहे हैं उनकी क्या दशा होगी?

समाधान—मेरे कहने से नहीं; बल्कि परिस्थिति का दिग्दर्शन होने से लोगों का हृदय-परिवर्तन होगा ही। कुछ लोग स्वतंत्र रूप से स्थिति को समझेंगे, कुछ वातावरण से प्रभावित होंगे और कुछ परिस्थिति की अनिवार्यता को देखकर मान जायँगे। तबतक गरीबों की दशा जैसी है, वैसी ही रहेगी। यह आन्दोलन तो उनकी दशा सुधारने के लिए है। संसार में क्या कभी ऐसा भी हुआ है कि जिस सुधार के लिए आन्दोलन चलाया जाय, उसके सफल होने से पहले ही सुधार हो जाय? आप किसी भी तरीके से गरीबों की गरीबी दूर करने की चेष्टा करें, जबतक वह दूर नहीं होती तबतक तो लोग गरीब रहेंगे ही। चीन में भी जबतक कम्युनिस्ट पार्टी लड़ती रही तबतक तो गरीबों की हालत पहले से सुधरी नहीं, बल्कि आन्दोलन के दर्मियान उनकी हालत पहले से भी बदतर हो गयी थी। भूमि-दान-यज्ञ की खूबी यह है कि यदि क्रांति सफल होने तक गरीब की गरीबी दूर नहीं होती है तो कम-से-कम क्रान्ति के दौरान में उनकी हालत बदतर नहीं होती; बल्कि जिस हद तक भूमि का बँटवारा होता चलता है, उनकी हालत सुधरती ही जाती है।

सर्वोदय : नैतिक और भौतिक दोनों का उदय

शंका—भूमि-दान या अन्य आन्दोलन से उत्पादन के साधनों का विकेन्द्रीकरण होने पर एक वर्ग का अहित ही होगा:

फिर सर्वोदय कैसे हुआ? सर्वोदय का मतलब तो सबका उदय है न?

समाधान—उत्पादन के साधन के केन्द्रीकरण से समाज में शोषण होता है, यह तो मैंने कहा ही है। जब समाज में शोषण होता है तो शोषक और शोषित, दोनों का पतन होता है। एक का नैतिक पतन होता है और दूसरे का भौतिक। भूमि-दान-यज्ञ से भूमिपतियों का नैतिक उदय होगा और भूमिहीन मजदूरों का भौतिक उदय होगा, हानि किसी की नहीं होगी।

जनशक्ति का काम

शंका—पंडित जवाहरलाल नेहरू और बहुत से राज्य के मुख्य-मन्त्री लोगों को भू-दान-यज्ञ में काम करने की अपील करते हैं। वे अगर इसे मानते है तो कानून बनाकर भूमि का बँटवारा क्यों नहीं करते? विनोबाजी का सरकार पर भी काफी असर है, फिर भी वे सरकार को कानून बनाने को न कहकर क्यों मारे-मारे फिरते हैं?

समाधान—सरकार क्यों नही कानून बनाती है, यह सवाल तो आप सरकारी अधिकारियो से पूछें। हो सकता है कि वे यह सोच रहे हैं कि कानून बनाने से देश में जो विरोध खड़ा हो सकता है, उससे अशान्ति फैलने की आशंका है। इसलिए वे भू-दान-यज्ञ में मदद करके कानून के लिए पहले अनुकूल वातावरण बना लेना चाहते हैं। लेकिन वास्तविक कारण तो वे ही बता सकते हैं। विनोबाजी उनको कानून बनाने को क्यों नहीं कहते हैं, इसका जवाब मैं दे सकता हूँ।

भूमि दान-यज्ञ का ध्येय केवल भूमि का सम-विभाजन ही

नहीं है। यह तो एक बुनियादी क्रान्ति की शुरुआत मात्र है। असल क्रांति शोषणहीन समाज कायम करने की है। शोषण केवल मनुष्य के शरीर का ही होता हो, ऐसी बात नहीं है। आत्मा का भी शोषण होता है। यह शोषण शासन द्वारा आजादी छीन-कर किया जाता है। जिस हद तक मनुष्य पर शासन रहता है उस हद तक उसकी आत्मा कुंठित रहती है। अतः शोषणहीन समाज पूर्ण रूप से तभी संभव है जब दुनिया शासनहीन भी हो जाय।

संसार में दो शक्तियाँ काम करती हैं—दण्डशक्ति और जन-शक्ति। समाज का संगठन तथा संचालन अगर दण्डशक्ति के आश्रित चला तो संसार शासनहीन नहीं हो सकता। प्रायः शासनहीन समाज कायम करने के लिए यह जरूरी है कि सामाजिक समस्याओं का समाधान केवल जनशक्ति के आधार पर हो और समाज को दण्डशक्ति की आवश्यकता ही न रहे।

भूमि-समस्या जैसे गम्भीर प्रश्न को अगर हम दण्डशक्ति के बिना ही हल कर लेते हैं तो दुनिया में शासनहीन समाज कायम करने की दिशा में एक बहुत बड़ा किला फतह कर लेते हैं। फिर समाज के संगठन और संचालन में छोटी बातों को दण्डनिरपेक्ष होकर जनशक्ति के भरोसे ही चला लेना आसान काम हो जाता है। यही कारण है कि हम दण्डशक्ति को छोड़कर जनशक्ति के आधार पर अपना सारा काम चलाने की चेष्टा करते हैं, ताकि जनता को आत्मविश्वास पैदा हो जाय कि दण्डनिरपेक्ष समाज सम्भव ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक भी है, जिससे शासनहीन समाज की ओर वह उत्साह के साथ निरंतर प्रगति कर सके।

वाद और योग का फर्क

शंका–आप लोग भी शासनहीन, वर्गहीन समाज की बात करते हैं। साम्यवादी भी तो शासनहीन समाज कायम करने का ध्येय रखते हैं, तो सर्वोदय और साम्यवाद में फर्क क्या है ?

समाधान–विनोबाजी अपने काम को साम्ययोग कहते हैं। 'वाद' और 'योग' में जो फर्क है वही फर्क इन दोनों सिद्धान्तों में है। वाद शब्द से केवल आदर्श और दर्शन प्रकट होता है, लेकिन योग शब्द का मतलब है, अभ्यास।

साम्यवादी बात तो शासनहीन समाज कायम करने की कहते है, लेकिन अभ्यास में उसका उल्टा करते हैं। वे दिन-ब-दिन मानव-समाज पर शासन का कब्जा बढ़ाते चलते हैं, यह कहकर कि अतिम स्थिति में शासन सूख जायगा। आदर्श स्थिति यानी अतिम स्थिति समाज के अन्त मे ही होती है। रेखागणित के बिन्दु जैसी उसकी हमेशा कल्पना ही की जाती है, वह पकड़ में नहीं आती। इसीलिए मैं कह रहा था कि साम्यवादी की शासनहीनता एक 'वाद' यानी आदर्श ('उटोपिया) मात्र है, अभ्यास में वह शासनहीनता नहीं, 'शासनपूर्णता' ही है। सर्वोदय प्रथम से ही शासननिरपेक्ष होकर जनशक्ति के आधार पर समाज के संगठन और संचालन का अभ्यास करता है। जैसे-जैसे यह अभ्यास आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे शासनहीनता प्रत्यक्ष तथा वास्तविक रूप से स्थापित होती चलती है। इस तरह साम्यवाद और साम्ययोग एक ही चीज न होकर एक-दूसरे से भिन्न है।

गरीब का दान क्यों ?

शंका—कम जमीनवाला अपनी सारी जमीन दान में दे देता है तो वह अपना और अपने परिवार का निर्वाह कैसे करेगा ?

समाधान—जिस तरह करोड़ों भूमिहीन मजदूर निर्वाह करते हैं उसी तरह से उसका भी निर्वाह होगा और फिर जैसे सब भूमिहीनों की समस्या हल होगी, उन्हींके साथ उसकी भी समस्या हल होगी। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उनकी स्थिति सामान्य-भूमिहीन मजदूर जैसी-रहेगी।

दूसरे, भूमिहीन मजदूरों की स्थिति मजबूरी की स्थिति है; लेकिन सारी जमीन देकर जो भूमिहीन मजदूर बन गये हैं, उन्होंने स्वेच्छा से ऐसा किया है। अतः उनमें आत्मसंतोष है और वे क्रांति के एक सिपाही होकर, दूसरे भूमिहीन मजदूरों के बीच रहकर, उनमें भी क्रांति फैलायंगे। वस्तुतः विनोबाजी गरीबों से जो जमीन ले रहे हैं, उससे वे अपनी क्रांति की फौज में वृद्धि कर रहे हैं, ताकि आन्दोलन की गति तेज हो सके। अगर यह क्रांतिकारी शक्ति आज के भूमि-हीन मजदूरों में नहीं फैलेगी तो बेहोश होने के कारण भूमिहीन मजदूर निराशाजनक और विनाशकारी नारों से प्रभावित होकर सही क्रांति को न समझने से विध्वंस के लिए उतारू हो जायँगे और हिंसा-प्रतिहिंसा के घात-प्रतिघात से संसार जर्जरित होता रहेगा।

भूमि के बाद साधन

शंका—दण्डनिरपेक्ष होकर अगर आप भूमिका पुनर्विभाजन कर भी दें, तो जिन्हें जमीन मिलेगी वे उसकी किस शक्ति के आधार पर रक्षा करेंगे ?

समाधान—अहिंसक क्रांति द्वारा भूमि का सम-विभाजन होने पर किसानों के अन्दर इतनी ताकत हो जायगी कि वे भूमि की रक्षा स्वयं कर सकेंगे। यही कारण है कि विनोबाजी जनशक्ति के संगठन पर इतना जोर देते हैं। वस्तुतः जनशक्ति संगठित होने

पर उत्पादक श्रेणी के हाथ में उत्पादन के साधन अपने आप आ जाते हैं और वे उसकी रक्षा भी अपने आप कर लेते हैं।

दंड-शक्ति की साधना अनुचित

शका—अगर किसानों में ताकत आ जाय तो वे अपनी सपत्ति की रक्षा आप कर लेंगे, अगर ऐसी बात है तो जब तेलगाना के किसानों ने ताकत के साथ जमीन पर कब्जा किया तब सरकार ने उनसे जमीन क्योंकर वापस ली ?

समाधान—इसका मतलब है कि तेलगाना के किसान ताकतवर नहीं थे। उन्होंने कम्युनिस्ट-पार्टी की बन्दूक के जोर से जमीन पर कब्जा किया था। पार्टी की बन्दूक से सरकार की बन्दूक की ताकत बढ जाने पर वह जमीन छूट गयी। फौज की बन्दूक के भरोसे जनशक्ति सगठित नहीं होती, बल्कि निरन्तर बन्दूक के सहारे पर रहने से वह शक्ति पगु हो जाती है। यही कारण है कि तेलंगाना का किसान पंगु हो गया था।

कार्यकर्ताओं का काम

शंका—एक ओर से आप भूमि-दान-यज्ञ की क्राति कर रहे हैं और दूसरी ओर भूमि-पति बटाईदार और सिकमीदारों से बराबर खेत निकालते जा रहे हैं। इससे जो देश में परेशानी बढ़ रही है, उसके लिए आप क्या सोच रहे हैं ?

समाधान—शुरू में ऐसा होना स्वाभाविक है। कृष्ण के जन्म के साथ साथ कंस का प्रकोप बढ़ने लगा था। ससार में जब कभी किसी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का जन्म होता है तो जिस प्रतिक्रियाकारी शक्ति को वह खत्म करती है, उसका प्रकोप बढ़ता ही है।

भूमि-दान के काम से यह अनुभव आया है कि जहाँ कहीं कार्यकर्ता पहुँचकर भूमि-दान आन्दोलन का काम बढ़ाते हैं वहाँ बेदखली की समस्या करीब-करीब खत्म हो जाती है, क्योंकि वहाँ के लोगों को परिस्थिति का दिग्दर्शन हो जाता है। इसलिए इस परेशानी को रोकने का उपाय यह है कि अधिक से अधिक कार्यकर्ता गाँव-गाँव में ऐसे फैल जायँ कि प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति के फैलाव के लिए खुला स्थान न रह जाय।

इसका मतलब यह नहीं है कि कहीं बेदखली होती देखकर आप उदासीन रहें। आपको पहले दोनों पक्षों में समझौता कराने की कोशिश करनी होगी। साथ-साथ जो बेदखल हो रहे हैं, उनमें ऐसी जाग्रति करनी होगी जिससे वे जमीन पर डट सकें और बेदखल होने से इनकार कर सकें।

यज्ञ की आहुति

शंका—आप सिर्फ बड़े-बड़े जमींदारों से न माँगकर थोड़ा जमीनवालों से ही क्यों माँगते है? वे तो पहले से ही गरीब हैं।

समाधान—यज्ञ में सबको आहुति देने की आवश्यकता है नहीं तो यज्ञ सफल नहीं होता। हम तो भूमिहीनों से भी दान माँगते हैं। उनसे श्रमदान लेते हैं, ताकि वे भी हमारी क्रान्ति में शामिल हो सकें।

दूसरी बात यह है कि मानसिक परिवर्तन के बिना अगर भौतिक परिवर्तन हो भी जाय तो वह अधिक दिन टिक नहीं सकता। भूमिवानों से भूमि छुड़ाने के साथ-साथ भूमि पर से ममता भी छुड़ाना आवश्यक है। भूमि पर ममता छोटे और बड़े भूमिवानों की समान रूप से होती है। इसलिए दोनों से भूमि माँगी जाती है, ताकि दोनों को ममता छोड़ने का अभ्यास हो।

इतिहास में प्राय' यह देखा गया है कि क्रांति सफल होते-होते प्रति-क्रान्तिकारी शक्ति संगठित होकर उस पर कब्जा कर लेती है। नतीजा यह होता है कि क्रान्ति प्रतिगामी हो जाती है। अगर ममता के बिना छुडाये, येन केन प्रकारेण, भूमि छुडा ली जाय तो सपत्ति पर की ममता पुजीभूत होकर दूसरे क्षेत्र यानी अधिकार-क्षेत्र मे प्रकट होकर प्रति-क्रान्तिकारी शक्ति पैदा करेगी। नतीजा यह होगा कि लोकशाही के बदले तानाशाही की सम्भावना बढ जायगी।

छोटे टुकड़े को खेती लाभप्रद

शंका--भारत की भूमि के टुकड़े-टुकडे मे रहने की समस्या पहले से है भूमिदान से उसका और टुकडा हो जायगा। भूमि के टुकडे होने से उसकी पैदावार घटती है, ऐसी कृषि-शास्त्रियो की राय है। फिर आप जो पैदावार बढ़ाने की बात कहते हैं, वह कैसे सधेगी ?

समाधान— कृपि-शास्त्र के बारे में आपकी राय पचास साल पुरानी है। कृपि-शास्त्र के अति आधुनिक प्रयोग ने यह साबित कर दिया है कि छोटे टुकडे में खेती करने से पैदावार घटती नहीं, बल्कि बढती है। इङ्गलैंड, जापान और चीन ने जमीन के छोटे-छोटे टुकडे करके उत्पादन के काम में क्रातिकारी वृद्धि की है। विनोबाजी परिवार पीछे पॉच एकड़ जमीन दे रहे हैं। जापान में तो तीन ही एकड जमीन है। उन्होने पैदावार की वृद्धि मे जो सफलता प्राप्त की है, वैसी आज तक कहीं नहीं हुई है। आपको मालूम है कि जापान में ८०%खेती पर हल नहीं चलता। कुदाल आदि औजारों का इस्तेमाल करके हाथ से ही खेती करते हैं। इस तरह कृषि-शास्त्र की पुरानी किताबों में लिखे अनुसार लोगो

का यह खयाल कि खेत के टुकड़े हो जाने से वह आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी होगा, एक वहम मात्र है।

आपने जो यह कहा है कि पहले से लोगों की जमीन टुकड़ों में बँटी हुई है और भूमि-दान से उसके और ज्यादा टुकड़े हो जायँगे, यह भी खयाल गलत है। हमें जो कोई भी जमीन देता है वह एक पूरा टुकड़ा देता है। किसी एक टुकड़े का आधा नहीं देता, बल्कि एक गाँव में जब कई लोगों ने जमीन दी है तो सबने एक ही जगह के अपने-अपने टुकड़े दे दिये हैं। इस तरह बहुत-से टुकड़े इकट्ठे भी हो गये।

शासन-हीन नहीं, शासन-निरपेक्ष

शंका—आपका आदर्श शासनहीन समाज कायम करना है। लेकिन आपने कहा है कि आदर्श स्थिति रेखागणित के बिन्दु जैसी होती है। इसका मतलब है सर्वोदय-समाज में भी व्यवहारतः कहीं-न-कहीं राज्य का स्थान रह जाता है; तो समाज में उसका क्या स्थान होना चाहिए?

समाधान—यह ठीक है कि शासनहीन समाज आदर्श स्थिति है। इसलिए मैंने व्यवहार में 'शासननिरपेक्ष' शब्द इस्तेमाल किया है। इसका मतलब यह है कि शासन का अस्तित्व होते हुए भी समाज का साधारण तथा दैनिक संचालन और संगठन शासन-शक्ति के बाहर जनशक्ति के द्वारा ही होता रहेगा।

सर्वोदय समाज में स्वावलम्बी ग्राम्य इकाई पूर्ण विकसित होगी। राज्य का अस्तित्व केवल उन्हें एक सूत्र में बाँधने के लिए होगा, ताकि समाज छिन्न-विच्छिन्न न होने पाये। पूर्ण प्रस्फुटित फूलों की माला एक में गूँथने के लिए धागे की आवश्यकता होती है; लेकिन अच्छी माला में विकसित फूल ही दिखलाई देते हैं।

धागा अदृश्य रहता है। जब धागा दिखलाई दे, तो समझना चाहिए कि माला सूख रही है। इसी तरह पूर्ण विकसित स्वावलम्बी ग्राम्य इकाइयों को एक राष्ट्र तथा समाज-सूत्र में बाँधने के लिए राज्य की आवश्यकता है। लेकिन सर्वोदय समाज में राज्य का अस्तित्व होते हुए भी उसका अनुभव साधारणतया लोगों को नहीं होगा। अगर हुआ तो समझना होगा कि समाज सूख रहा है।

जमींदार : कड़ी धातु के बने हुए ?

शंका—बड़े जमींदार अब रजिस्टर्ड खेती के रूप में जो उदित हो रहे हैं, वे ऐसी कड़ी धातु के बने हुए हैं कि वह पिघलनेवाले नहीं हैं और भूमि मिल सकेगी, ऐसा सोचना कल्पनामात्र है।

समाधान—बड़े जमींदार ऐसी कड़ी धातु के बने हुए हैं कि वे पिघलनेवाले नहीं हैं, यह गांधी-विचार को समझनेवाले के मुँह से सुनकर हमको आश्चर्य हो रहा है। गाँधीजी के साथ छाया के रूप में इतने दिनों रहने के बाद प्रेम की आँच से कड़ी धातुओं के पिघलने के बारे में सन्देह करना बापू के मूल सिद्धान्त को भूल जाना है। हमको बड़े जमींदारों और फार्मदारों से भी जमीन मिली है और अच्छी जमीन के हिस्से भी मिले हैं। हमारे हर-एक कार्यकर्ता का पूर्ण विश्वास है कि उनसे और जमीन मिलेगी।

शंका—बहुत-सी भूमि निम्नकोटि की है। उसे बाँट देने से भूमिहीन के पास केवल निम्नकोटि की भूमि रह जायगी और अच्छे जमींदार अच्छी जमीन के मालिक बने रहेंगे।

समाधान—जिन्हें यह भय है कि भू-दान-यज्ञ आन्दोलन से निम्नकोटि की जमीन भूमिहीन के पास चली जायगी और उच्च-कोटि की भूमि आज जिनके पास है उन्हीं के पास रह जायगी उन्हें समझना चाहिए कि कानून बनाकर भी यह स्थिति बदली

नहीं जा सकती। कानून में 'सीलिंग' मुकर्रर होगी। पंचवार्षिक योजना ३० एकड़ और समाजवादी दल १५ एकड़ हद बाँधने की बात करते हैं। सरकार इससे भी आगे बढ़कर अगर सीलिंग बनाये तो भी जिसके पास आज जमीन है, वह अपने हक के हद तक अच्छी ही जमीन छाँटकर रख लेगा। विनोबाजी को भी आज जितनी जमीन मिली है, उतनी जमीन से संतोष नहीं है। बल्कि वे तो सीलिंग की बात भी छोड़ देते हैं। वे 'फ्लोरिंग' की बात करते हैं। अर्थात् अपने गुजरान भर की जमीन रखकर सब जमीन दे देने की बात करते हैं। स्वभावत इसमें भी लोग अच्छी जमीन रखकर बाकी जमीन देंगे। लेकिन हमारा अनुभव तो यह है कि कानून बनाने पर जितनी अच्छी जमीन मिलेगी, उससे अच्छी जमीन भूमिदान से मिल रही है।

ग्रामीकरण और व्यक्तिवाद

शंका—आपलोग भूमि के ग्रामीकरण की बात करते हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति व्यक्तिवादी होती है। वह स्वार्थी होता है। फिर ग्रामीकरण कैसे चल सकेगा ?

समाधान—यह ठीक है कि मनुष्य मे स्वार्थ है और उसमे व्यक्तिवादी प्रवृत्ति भी है। लेकिन साथ-साथ उसमे समाजवादी वृत्ति भी है। वस्तुत: समाजवादी वृत्ति भी सामूहिक स्वार्थ के कारण ही है, क्योंकि मनुष्य समझता है कि सामूहिक स्वार्थ की रक्षा के बिना व्यक्तिगत स्वार्थ की भी रक्षा नहीं हो सकती। इसके अलावा सामाजिकता मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति भी है। केवल मनुष्य ही नहीं, दूसरे प्राणी भी झुंड मे ही रहना पसन्द करते हैं।

अत: स्पष्ट है कि मनुष्य में जहाँ व्यक्तिवाद है, वहाँ समाजवाद भी उसका स्वधर्म है। अगर आप चाहते हैं कि समाजवाद

करना होगा। यह काम रूस में लाल सेना के डिक्टेटरशिप द्वारा लेनिन भी नहीं कर सका था। लाखों व्यक्तियों को गोली का शिकार बनाने पर भी किसानों को जमीन वापिस करनी पडी थी। कोई भी गणतांत्रिक सरकार यह कदम नहीं उठा सकती।

भू-दान-यज्ञ का मूल उद्देश्य केवल भूमि-वितरण नहीं है। भूमि-वितरण तो आन्दोलन का पहला कदम है। इस यज्ञ का उद्देश्य राजनैतिक तथा आर्थिक क्रान्ति है। आन्दोलन के नतीजे से शासन-मुक्त समाज कायम करने का ध्येय है। शासनमुक्त समाज तभी होगा जब समाज में शासन का आवश्यकता न रहे। भूमि-समस्या के समाधान के लिए शासन-शक्ति की अनिवार्य आवश्यकता को माननेवाले शासन-मुक्त समाज-क्रान्ति की बात नहीं कर सकते।

क्रान्ति सिर्फ स्थिति-परिवर्तन से नहीं होती। इसके लिए मान्यता-परिवर्तन का आवश्यकता है। भूमिदान-यज्ञ भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का विसर्जन चाहता है। यह विसर्जन अगर जबर्दस्ती कराया जाय तो भू-स्वामी के हाथ से जमीन चली जायगी, लेकिन उसके हृदय मे स्वामित्व-विसर्जन की मान्यता निर्माण नहीं होगी। विचार-परिवर्तन के द्वारा मान्यता-परिवर्तन किये बिना जबर्दस्ती जमीन छीन लेने पर मनुष्य के हृदय में पुरानी मान्यता निर्दलित होकर प्रतिक्रिया के रूप में प्रतिक्रान्ति का बीज बनेगी। यह बीज निरन्तर अकुरित होने की चेष्टा करेगा। फलस्वरूप बदली हुई परिस्थिति को अनन्तकाल तक दमननीति से ही कायम रखना होगा फिर क्रान्ति की स्थापना कब होगी? इसलिए क्रान्ति को पूर्ण रूप से सस्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि क्रान्ति की प्रक्रिया भी मान्यता-परिवर्तन की प्रक्रिया हो। कानून से यह करना असम्भव है।
